जन वाचन आंदोलन

बाल पुस्तकमाला

‘‘ किताबों में चिड़ियाँ चहचहाती हैं
किताबों में खेतियाँ लहलहाती हैं
किताबों में झरने गुनगुनाते हैं
परियों के किस्से सुनाते हैं
किताबों में रॉकेट का राज है
किताबों में साइंस की आवाज है
किताबों का कितना बड़ा संसार है
किताबों में ज्ञान की भरमार है
क्या तुम इस संसार में नहीं जाना चाहोगे?
किताबें कुछ कहना चाहती हैं
तुम्हारे पास रहना चाहती हैं ’’

–सफ़दर हाश्मी

मारिया मांटेसरी, गिजुभाई, ए.एस.नील का स्कूल समरहिल, सिल्विया ऍश्टन वार्नर, लक्ष्मी आश्रम, नानतिन बाड़ी, अंतोन मकारंको की गोर्की कालोनी, जानुज़ कोचार्क, जॉन होल्ट, गांधीजी आदि महान शिक्षाविदों के प्रयोगों की झलकियां।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

मूल्य : 15 रुपये **B - 30** Price : 15 Rupees

आंखों की चमक

अरविन्द गुप्ता

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने देश भर में चल रहे साक्षरता अभियानों में उपयोग के लिए किया गया है। जनवाचन आंदोलन के तहत प्रकाशित इन किताबों का उद्देश्य गाँव के लोगों और बच्चों में पढ़ने-लिखने की रुचि पैदा करना है।

आंखों की चमक : *Aankhon Ki Chamak*
अरविन्द गुप्ता : *Arvind Gupta*

जनवाचन बाल पुस्तकमाला के तहत
भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित

ÆEसाभार : फुलझड़ी

रेखांकन: अविनाश देशपांडे
लेजर ग्राफिक्स: अभय कुमार झा

चतुर्थ संस्करण : वर्ष 2007

मूल्य : 15 रुपये

Bharat Gyan Vigyan Samithi
Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block
Saket , New Delhi - 110017
Phone : 011 - 26569943, Fax : 91 - 011 - 26569773
email: bgvs_delhi@yahoo.co.in, bgvsdelhi@gmail.com
Printed at Sun Shine Offset , New Delhi - 110018

आंखों की चमक

अरविन्द गुप्ता

आंखों की चमक

मरिया मांटेसरी दुनिया की जानी-मानी शिक्षाविद थीं। उन्होंने 'पोस्टबाक्स' नाम का एक खिलौना बनाया था। इसमें बंद डिब्बे की हरेक सतह पर अलग-अलग आकार की एक खिड़की कटी होती है। कोई खिड़की तिकोनी होती है, तो कोई गोल। बच्चे को सही गुटके को खिड़की में पोस्ट करना होता है।

एक दिन एक पादरी स्कूल में आए। मांटेसरी उन्हें एक कोने में ले गयीं। वहां एक चार साल की लड़की पोस्टबॉक्स से खेल रही थी। वह खेल की दुनिया में एकदम खो गयी थी। आसपास बच्चे ज़ोर-ज़ोर से गाना गा रहे थे। पर वह बच्ची अपने खेल में मस्त थी। वह बाकी दुनिया से एकदम बेखबर थी। मांटेसरी ने उसे उठा कर मेज़ पर बिठा दिया। बच्ची फिर अपने खेल में रम गई। पादरी उस दिन एक

बिस्किट का डिब्बा लाए थे। उन्होंने बच्चों में बिस्किट बांटे, इस बच्ची को भी दिया। बच्ची ने अनमने भाव से बिस्किट लिया। उसने झट से आयत की शक्ल वाले बिस्किट को आयताकार खिड़की में डाल दिया।

बच्चे लालच और रिश्वतों से नहीं सीखते। वह इसलिए सीखते हैं क्योंकि वह दुनिया में नये हैं और दुनिया को समझना चाहते हैं। सभी बच्चों की आंखों में उस चार वर्ष की बच्ची जैसी चमक होती है। बाद में यह चमक न जाने कहां खो जाती है? ❐

कहानियों का जादू

मास्टर लक्ष्मीशंकर परेशान थे। बच्चे दिन भर ऊधम मचाते और उनकी कोई बात न सुनते। गुरुजी ने कहा, ''चलो, हम शांति का खेल खेलेंगे। मैं कहूंगा, 'ओम' और तुम उसे दोहराना।'' शांति के खेल में भी बच्चों ने कुत्ते-बिल्ली की आवाज़ें निकालीं। मैं क्या करूं? कैसे बच्चों के मन को जीतूं? चलो इन्हें एक कहानी सुनाता हूं, मास्टरजी ने सोचा। कहानी शुरू हुई। तीन घंटे चुटकी मारते ही बीत गए। बच्चे मुंह बाए कहानी सुनते रहे। स्कूल की छुट्टी की घंटी बज गई। परंतु बच्चों ने घर जाने का नाम ही न लिया। उन्हें कहानी में बड़ा मज़ा आया। अगले दस दिन लक्ष्मीशंकर ने बच्चों को सिर्फ कहानियां ही सुनायीं। अब बच्चे मंत्रमुग्ध होकर अपने आप गोले में बैठने लगे। कोई फालतू का शोर न करता। ग्यारहवें दिन भी बच्चों ने कहानियों की मांग की। लक्ष्मीशंकर ने कहा, ''सच तो यह है, कि मेरी सारी कहानियों का खज़ाना तो तुमने पहले ही लूट लिया। पर ज़रा देखो

तो, हमारे क्लास में चालीस बच्चे हैं और हरेक के पास वही पाठ्य-पुस्तकें हैं। यह कितनी गलत बात है। तो तुम इस बार यह किताबें मत खरीदना। उनके पैसे मुझे दे देना। उन पैसों से मैं हरेक बच्चे के लिए तीन अलग-अलग कहानियों की किताबें लाऊंगा। उन्हें पढ़कर तुम्हें आनन्द आयेगा''। इस तरह लक्ष्मीशंकर ने कक्षा में ही पुस्तकालय शुरू किया। तीन स्कूली किताबों की बजाए बच्चों को सौ से भी ज़्यादा कहानी की किताबें पढ़ने का मौका दिया। बिना कहीं से अनुदान के कक्षा में पुस्तकालय शुरू कर दिया। एक स्वप्रेरित शिक्षक चाहे तो तमाम बंधनों के बावजूद वो बहुत कुछ कर सकता है। लक्ष्मीशंकर के प्रयोगों की पूरी कहानी के लिए गिजुभाई बधेका की अमर कृति ***दिवास्वप्न*** अवश्य पढ़ें। इसे ***नेशनल बुक ट्रस्ट*** ने बहुत सस्ती कीमत पर छापा है। ❐

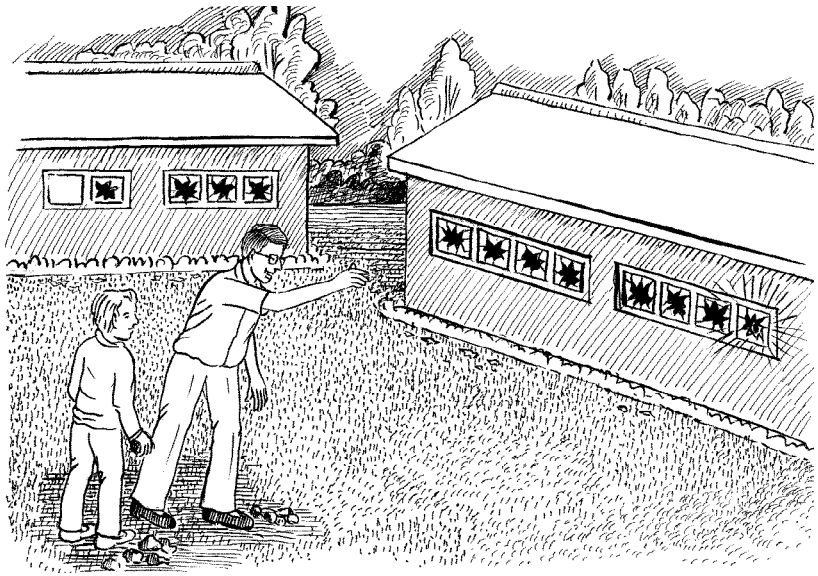

समरहिल

सत्तर बरस पहले इंग्लैंड में ए.एस.नील ने समरहिल नाम का स्कूल शुरू किया था। शायद यह दुनिया का पहला मुक्त स्कूल था। यहां बच्चों पर कोई बंदिश और अंकुश न था। समरहिल में यूनिफार्म, प्रार्थना, घंटी, हाज़िरी, पाठ्यक्रम, गृहकार्य और परीक्षायें नहीं थीं। बच्चों को बहुत छूट थी। वह चाहते तो क्लास में जाते, नहीं तो मज़ा करते, खिलौने बनाते और तितलियां पकड़ते। कुछ बच्चे वर्कशाप में ठोका-पीटी करते। सचमुच समरहिल खुशियों का स्कूल था।

यहां शरारती और ऊधमी बच्चे ही ज़्यादा आते। एक बार आठ साल का लड़का आया। उसे पिछले स्कूल से निकाल दिया गया था। वह अब किसी भी स्कूल में जाना नहीं चाहता था। पिता उसे जबरदस्ती

लाए थे। लड़का बेहद गुस्से में था। उसने रोष में आकर एक पत्थर से खिड़की का कांच तोड़ डाला। नील पास ही में खड़े थे। वे कुछ न बोले। लड़के ने कांचो को फोड़ना ज़ारी रखा। नील ने उसे नहीं रोका। ग्यारह कांचों को फोड़ने के बाद लड़का एकदम पस्त हो गया। वह नील का चेहरा ताकने लगा। नील ने अब एक पत्थर उठाया और बारहवां कांच खुद फोड़ दिया। उपदेश के बिना ही नील ने उस लड़के का दिल जीत लिया। नील बार-बार यही कहते, ''अच्छे शिक्षक हो, तो बच्चों को उपदेश मत दो। बच्चो का पक्ष लो और उन्हें प्यार दो''। ❐

एक अनूठा प्रयोग

चौबिस साल तक सिल्विया एश्टन वार्नर ने न्यूज़ीलैंड में मावरी जनजाति के बच्चों को पढ़ाया। शिक्षा पर उनके अनुभव '**अध्यापक**' नाम की लाजवाब किताब में छपे हैं। बच्चों के पहले शब्द बहुत महत्व रखते हैं। इन आत्मीय 'मूलशब्दों' में बच्चों के माहौल की खुशबू भी होती है और उनके जीवन का दर्द भी।

सिल्विया बच्चों से पूछती, ''आज तुम्हें कौन सा शब्द चाहिए?'' बच्चे कहते 'भूत' 'सांप' 'छिपकली' आदि क्योंकि प्राय: सभी बच्चे एक डर के साये में जीते हैं। सिल्विया उनके शब्दों को एक मोटे कागज़ की पर्ची पर लिख देतीं। बच्चे उन शब्दों को लिखा देखते और उन्हें कभी न भूलते, क्योंकि वो तो उनके अपने ही शब्द थे। अगले दिन सिल्विया बच्चों से 'भूत' की कहानी सुनाने को कहतीं। बच्चों की कल्पना उड़ान भरती और उनके दिल से कहानी फूट पड़ती। सिल्विया,

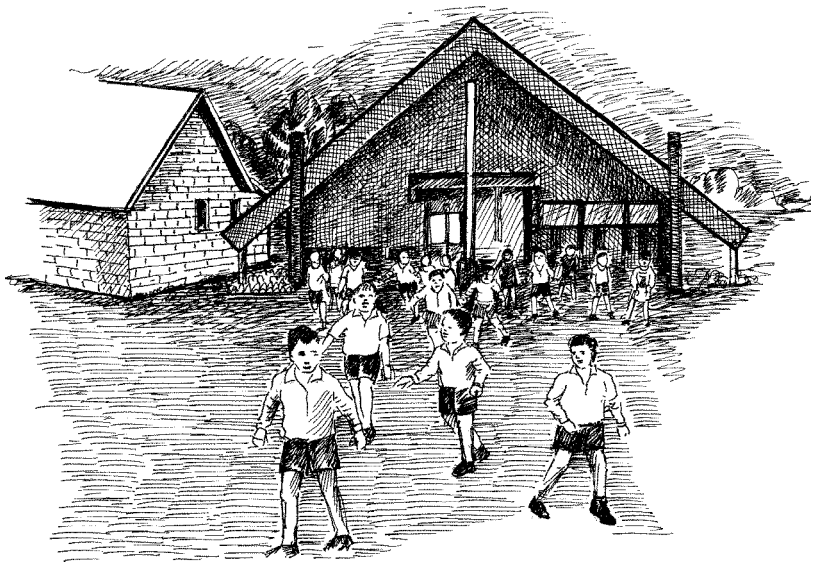

उस कहानी को, बच्चों के अपने ही शब्दों में सिर्फ लिख भर देतीं। क्योंकि वह कहानी बच्चों की अपनी थी, जिसमें उनके ही शब्द थे, इसलिए बच्चे उसे झट से पढ़ने लगते। वह इन कहानियों पर सुंदर चित्र बनाते। इस तरह छ: महीनों में बच्चों ने साठ सचित्र कहानियां लिखीं। यह कहानियां बच्चों के सपनों और अनुभवों के ताने-बाने से बुनी हुई थीं।

सिल्विया के ही तरीके को बाद में ब्राजील के शिक्षाविद पौलो फ्रेरे ने प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में बड़ी सफलता के साथ अपनाया। इस तरीके के उपयोग से अनपढ़ लोग बहुत जल्दी लिखना पढ़ना सीख गए। सिल्विया मानती थीं कि बच्चे के अन्दर तो ज्वालामुखी है। उसे प्यार से बस छूने भर की देरी है। फिर बच्चे की सृजनता बाहर फूट निकलेगी। उन्होंने बच्चों के अनुभवों को पाठ्यक्रम का एक अंग बनाया। ❐

लक्ष्मी आश्रम

अल्मोड़ा के थोड़ा आगे है कौसानी – एक छोटा मगर खूबसूरत पहाड़ी कस्बा। यहां पर बर्फ से ढंके हिमालय के पर्वतों को नज़ारा देखते ही बनता है। यहीं पर स्थित है लक्ष्मी आश्रम। इसकी स्थापना गांधीजी की प्रेरणा से कोई सत्तर वर्ष पहले मीरा बहन ने की थी। मीरा बहन मूलतः जर्मन थीं, परंतु उनके माता-पिता इंग्लैण्ड में बस गये थे।

लक्ष्मी आश्रम में गढ़वाल के गांवों से आई अलग-अलग उम्र की लड़कियां रहती हैं। यहां ज़िंदगी जीने की कुशलतायें हासिल करने पर अधिक ज़ोर है, किताबें पढ़ने पर कम। लड़कियां सुबह पांच बजे उठ कर लकड़ी लाती हैं और पानी भरती हैं। कुछ गाय-भैंसों की सानी-पानी करती हैं, तो कुछ सब्ज़ी की क्यारियां सींचती हैं। कुछ पेड़ों से नाशपातियां तोड़ती हैं। गांधीजी की बुनियादी तालीम की एक सच्ची झलक आज भी यहां दिखती है। आश्रम आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा हो, यहां इसी बात की कोशिश है। बाद में कुछ लड़कियां चरखा कताई/बुनाई में लग जाती हैं, तो कुछ चूल्हा जला कर दोपहर का खाना बनाती हैं। भोजन के पश्चात बर्तन मांझ-धो कर रखने के बाद ही दोपहर दो बजे स्कूल शुरू होता है। कुल तीन घंटे ही स्कूली पढ़ाई होती है। पांच बजे के बाद फिर शाम के खाने की तैयारी शुरू हो जाती है।

आश्रम में लड़कियां वो सब तो करती ही है जो शायद वह गांव में रह कर अपने घर में करतीं। उसके साथ-साथ वह अपने समाज और पर्यावरण के बारे में भी बहुत कुछ सीखती हैं। आश्रम का संचालन मेगसेसे पुरस्कार विजेता राधा भट्ट करती हैं। गढ़वाल के जंगलों को बचाने के लिए शुरू हुआ चिपको आंदोलन आज जग प्रसिद्ध है। चिपको की तमाम कर्मठ और सचेतन महिला कार्यकर्ता लक्ष्मी आश्रम से ही निकली हैं। विमला बहुगुणा उसकी एक अच्छी मिसाल हैं। ❐

नानतिन बाड़ी

भीमताल में एक कंपनी है जो टेलीविजन बनाती है। यहीं पर एक गोदाम में स्थित है **नानतिन बाड़ी** – यानि नन्हे बच्चों का घर। इस प्राथमिक शाला में आस-पास के स्थानीय बच्चे ही आते हैं। दस वर्ष पहले रूथ रस्तोगी ने इस स्कूल की स्थापना करी।

स्कूल शुरू होने की घंटी से बहुत पहले ही बच्चे वहां आ जाते हैं। क्यों? क्योंकि बच्चों को यहां बहुत मज़ा आता है। स्कूल के बाहर पुराने रबड़ के टायरों की बनी एक अद्‌भुत दुनिया है। इसमें तमाम झूले, स्लाइड, सी-सॉ, टायरों की सुरंगे आदि हैं। बच्चे घंटो इन पर खेलते रहते हैं।

स्कूल की व्यवस्था बहुत चुस्त है। बच्चों के काम आने वाली सभी चीज़ों को बहुत समझ-बूझकर रखा गया है। बच्चे उन्हें खुद ही निकाल कर इस्तेमाल के बाद वापस रखते हैं।

स्कूल में दसवीं पास दो तीन लड़कियां हैं, जो पढ़ाने की बजाए बच्चों की मदद अधिक करती हैं। एक कोने में बहुत करीने से बच्चों

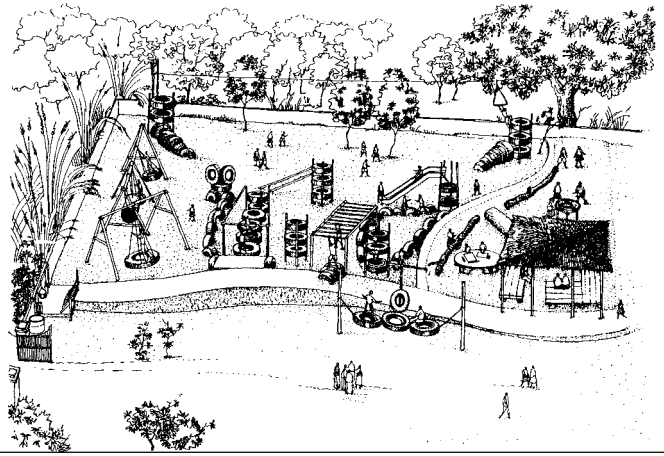

की सचित्र पुस्तकें सजी रखी हैं। बच्चे अपनी मनपसंद किताब उठाकर लाते हैं और दीदी उन्हें पढ़ कर सुनाती हैं।

वैसे दिन भर बच्चे अपनी मनमर्ज़ी के कामों में व्यस्त रहते हैं। कुछ कागज़ की चिड़िए बनाते हैं, तो कुछ मिट्टी के बर्तन। कुछ लूडो और सांपसीढ़ी खेलते हैं। क्रियाओं और गतिविधियों के ज़रिए ही बच्चे भाषा और विज्ञान की बुनियादी समझ हासिल करते हैं। साधारण बच्चों के लिए सस्ता स्कूल होने पर भी यह एक असाधारण स्कूल है। ❐

गोर्की कालोनी

अंतोन मकारंको रूस के महान शिक्षाविद थे। 1917 की रूसी क्रांति में हज़ारों लोग मारे गए। हज़ारों बच्चे बेघर हो गए। उनकी देखभाल करने वाला कोई न था। मां-बाप का साया उठ जाने के बाद इन अनाथ बच्चों ने आवारागर्दी का रास्ता अपनाया। छोटे-छोटे बच्चे भी जेबकतरी और चक्कूबाज़ी में उस्ताद हो गए। जो ज़्यादा तेज़ थे वह लूटपाट और चोरी करने लगे। जब आतंक बहुत बढ़ गया तो सरकार के आग्रह पर मकारंको ने गोर्की कालोनी नाम का एक सुधार घर शुरू किया। इसमें, पहले बैच के बच्चे अलग-अलग जेलों से आए।

एक चौदह बरस का लड़का कई बार जेल की हवा खा चुका था। उससे जेल के अफसर भी डरते थे। जब मकारंकी उसे लेने गए तब जेल के अफसरों ने राहत की सांस ली। मकारंको ने उस लड़के के कंधे पर हाथ रखा। उन्होंने उसे 200 रूबल और एक सामान की

सूची दी और कहा, ''घोड़ा-गाड़ी लो, और यह सामान खरीद कर कालोनी पहुंचो। आगे की बात वहीं करेंगे।''

लड़का अविश्वास से मकारंको को घूरता रहा। सारी दुनिया उसे चोर-लफंगा कह रही थी। गालियां दे रही थी। परंतु मकारंको ने उस पर विश्वास किया। घोड़ा गाड़ी और इतने सारे रूबल तक उसे सौंप दिए। लड़का घोड़ा-गाड़ी लेकर चला। परंतु उसके दिल में डर था - ''अगर किसी चोर ने रास्ते में यह पैसे मुझ से छीन लिए तो मैं मकारंको को क्या मुंह दिखाऊंगा।'' उसने झटपट सामान खरीदा। परंतु कालोनी पहुंचते-पहुंचते वह पसीने से भीग गया था।

बच्चों के हालात ही उन्हें चोर-उचक्का बनाते हैं। मकारंको का विश्वास था कि सही माहौल में बच्चे सुधरेंगे और सोवियत संघ के अच्छे नागरिक बनेंगे। गोर्की कालोनी में उन्होंने अपने इस सपने को पूरा कर दिखाया। ❐

एक अनोखा स्कूल

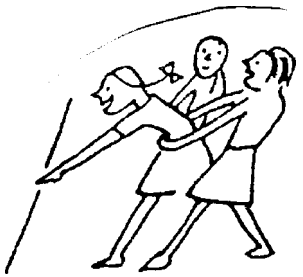

जूलिया वेबर गौर्डन अमरीका के एक दूर दराज़ गांव के स्कूल में पढ़ाती थीं। आज से साठ साल पहले वहां हालत काफी खराब थी। स्कूल में सिर्फ एक कमरा था। पैसों की बेहद कमी थी। खेलने और सीखने का अधिकतर सामान या तो बच्चों ने खुद बनाया था या फिर कहीं से उधार लिया था। मिस वेबर इस कमी और अभाव से फिर भी घबरायीं नहीं। पहली से आठवीं तक के स्कूल में वह एकमात्र टीचर थीं। कुछ बच्चे ने केवल पढ़ाई में कमज़ोर थे पर मानसिक रूप से भी पिछड़े हुए थे। परंतु मिस वेबर के लिए प्रत्येक बच्चा मायने रखता था। इसीलिए सभी बच्चे सीखते, आगे बढ़ते और प्रगति करते।

क्योंकि सरकार छोटे स्कूलों को शैक्षणिक सामग्री, विशेषज्ञ टीचर आदि नहीं दे पाती, इसीलिए वह सभी स्कूलों को कारखानों जैसा बड़ा और मंहगा बनाती है। इस स्कूल का अनुभव एकदम अलग था। एक ही महीने में इन गरीब बच्चों ने स्कूल का सारा माहौल ही बदल डाला। उन्होंने सस्ती स्थानीय चीज़ों और फेंकी हुई

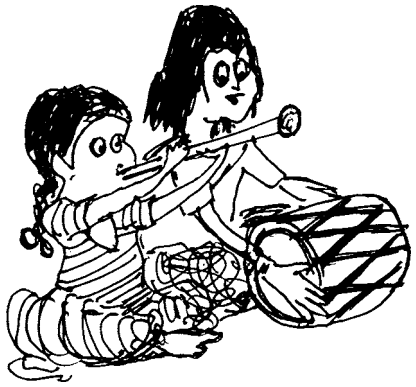

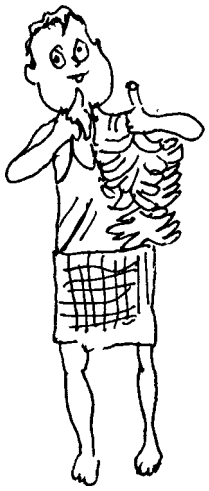

वस्तुओं से तमाम विज्ञान के प्रयोग रचे। कई उपकरण वह पास के हाई-स्कूल से मांग कर ले आए। उन्हें जब किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ती वह उसे किसी संस्था या व्यक्ति से उधार ले आते। गांव के बढ़ई की मदद से उन्होंने एक लकड़ी का घर और तमाम खेल का सामान बनाया। मिस वेबर की प्रेरणा से बच्चों ने डिस्ट्रिक्ट लाइब्रेरी से एक वर्ष में 700 पुस्तकें उधार लेकर पढ़ी। यानि कि हरेक बालक ने 20 से अधिक पुस्तकें पढ़ीं। जबकि बड़े-बड़े आलीशान स्कूलों के पुस्तकालयों में किताबें अल्मारियों में कैद सिसकती रहती हैं। शिक्षा में हम हमेशा पैसे की कमी का रोना रोते हैं। पर कमी पैसे की नहीं हमारी दृष्टि की है। हम अर्थहीन व्यवस्था और उबाऊ पाठ्य-पुस्तकों पर पैसा बहाते हैं। बच्चे तभी अच्छी तरह सीखते हैं जब उनका स्कूल एक बड़े समाज का अंग होता है। तब उनकी पढ़ाई स्कूल के बाहर के समुदाय को छूती है और उस पर असर करती है।

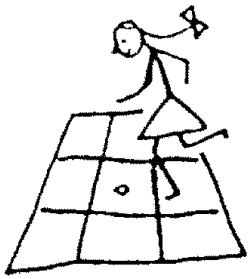

एक अच्छे टीचर को कई कुशलतायें आनी चाहिए। मिस वेबर की खासियत यह थी कि वह बहुत सारे हुनर जानती थीं। वह हार्मोनियम बजातीं, लोक नृत्य

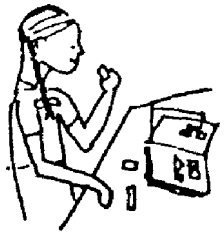

करतीं, गाना गातीं, कठपुतलियां बनातीं, अंकों के खेल खेलतीं, कागज़ की फिरकी बनाती, चित्रकारी करतीं और कहानियां सुनातीं। वह लगभग सभी पेड़ों, पक्षियों, और पत्थरों को पहचान सकती थीं। साथ में वह बच्चों को खाना पकाना, कपड़ा बुनना, मिट्टी के खिलौने आदि बनाना भी सिखातीं। उन्हें कई चीज़ें नहीं आती थीं। पर वह बच्चों को उन्हें भी करने को प्रेरित करतीं। वह खुद बच्चों के साथ मिलकर चीज़ें बनातीं, गल्तियां करतीं और उनसे सीखतीं।

दुर्भाग्य इस बात का है कि अधिकतर टीचर केवल शब्दों का प्रयोग जानते हैं। वह केवल पढ़ा सकते हैं। उसके अलावा उनकी कुशलतायें बहुत सीमित होती हैं। मिस वेबर के बच्चे स्कूल की चारदीवारी के अंदर ऊब जाते थे। उन्हें सबसे अधिक मज़ा पास के जंगल में पिकनिक मनाने या तलाब के किनारे खेलने में आता था। इसलिए अक्सर बच्चों की क्लास स्कूल के बाहर ही होती थी। स्कूल में साधनों का अभाव अवश्य था, फिर भी बच्चे अपने प्रश्नों का जवाब कहीं न कहीं से खोज ही निकालते थे। मिस वेबर किसी केंद्रीय पाठ्यक्रम से नहीं बंधी थीं। वह बच्चों की रुचियों और रुझानों के अनुरूप ही पाठ्यक्रम को ढाल देतीं। इस तरह वह हर साल वही बोझिल और उबाऊ पाठ्यक्रम पढ़ाने से बच जातीं। ❐

स्रोतः माई कंट्री स्कूल डायरी- जूलिया वेबर गौर्डन

मिस्टर डाक्टर

जानुज़ कोचार्क का जन्म पोलेंड के एक गरीब यहूदी परिवार में हुआ था। उनके घर में खाने तक को न था। अथक मेहनत और लगन से पढ़कर कोचार्क डाक्टर बने। अपने बचपन की गरीबी को वह कभी भूले नहीं। उन्होंने गरीब बच्चों के लिए एक अनाथालय खोला। करीब सौ अनाथ बच्चे इसमें रहते। कोचार्क बच्चों के इलाज के विशेषज्ञ, एक प्रसिद्ध डाक्टर थे। इसीलिए सभी बच्चे उन्हें प्यार से मिस्टर डाक्टर कह कर बुलाते। मिस्टर डाक्टर भी बच्चों को अथाह प्रेम करते। वह बच्चों के पिता, टीचर, मित्र सभी कुछ तो थे। कोचार्क ने कई पुस्तकें लिखीं जैसे **'एक तितली की आत्मकथा'** और **'मैं कब छोटा बनूंगा'**। पुस्तकों के शीर्षक कोचार्क के संवेदनशील मन की एक अच्छी झलक हैं।

दूसरे महायुद्ध में हिटलर ने लाखों यहूदियों को गैस की भट्ठी में झोंक दिया। एक दिन हिटलर की बर्बर पुलिस अनाथालय में भी आ धमकी। सभी बच्चों से एक कतार में गैस चेम्बर की ओर बढ़ने को कहा गया। पुलिस ने कोचार्क से खिसक लेने का आग्रह किया। परंतु मिस्टर डाक्टर ने बच्चों का साथ न छोड़ा। बच्चे मिस्टर डाक्टर के साथ-साथ गाना गाते आगे बढ़े। बच्चों के दिल में कोई डर नहीं था। उनके चेहरे पर कोई शिकन न थी। उनके प्रिय डाक्टर जो उनके साथ थे। जब गैस की भट्ठी आई तो कोचार्क उसमें सबसे पहले घुसे। बच्चे उनके पीछे-पीछे गए।

कोचार्क जैसे महान शिक्षक ने अंतिम क्षणों में भी बच्चों का साथ न छोड़ा। उन्होंने आखिरी दम तक बच्चों के आंसू पोछे और उन्हें सहारा दिया।

कोचार्क का एक नारा :

'बच्चे दुनिया के सबसे पुराने सर्वहारा हैं।'

आज भी हमारे कानों में गूंजता है। ❐

कबाड़ से जुगाड़

हम चीजों को इस्तेमाल करके फेंक देते हैं। पूरी उपभोक्ता संस्कृति अधिक खरीदो और अधिक फेंको के सिद्धांत पर टिकी है। इससे एक ओर कचरे के ढेर बढ़ रहे हैं तो दूसरी ओर पृथ्वी के सीमित साधनों का दुरुपयोग हो रहा है। चीज़ों को देखने का एक और भी नज़रिया हो सकता है। इस दृष्टिकोण के हिसाब से हरेक चीज़ की कई ज़िंदगी होती है। एक जीवन समाप्त होने पर वही वस्तु नये रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस कहानी में पर्यावरण के प्रति एक गहरी संवेदना की झलक है।

भगवान बुद्ध से जब एक भिक्षु ने नये अंगरखे की मांग की तो बुद्ध ने पूछा, 'तुमने पुराने अंगरखे का क्या किया?'

'भगवन वह तो बहुत पुराना हो गया था। मैंने उसे बिस्तर पर चादर जैसे बिछा दिया है,' भिक्षु ने उत्तर दिया।

बुद्ध ने पूछा, 'फिर तुमने पहली वाली चादर का क्या किया?'

'वह चादर तो घिस कर इतनी कट गई कि मैंने उससे तकिये का गिलाफ बना लिया है,' भिक्षु ने कहा।

'फिर तुमने पहले वाले गिलाफ का क्या किया?' बुद्ध ने पूछा।

'वह पुराना गिलाफ तो इतना जीर्ण-शीर्ण हो गया था कि मैंने उसका पायदान ही बनाना ठीक समझा,' भिक्षु ने कहा।

मामले की गहराई से तहकीकात करते हुए बुद्ध ने आखिरी बार पूछा, 'अच्छा यह तो बताओ कि पुराने पायदान का तुमने क्या किया?'

भिक्षु ने नम्रता से उत्तर दिया, 'भगवन पुराना पायदान तो फट कर एकदम तार-तार हो गया था। इसलिए मैंने उसके रेशों को बट

कर बाती बनाई और उसे तेल में डुबो कर दिए में जला दिया।'

भगवान बुद्ध भिक्षु से खुश हुए। उन्होंने उसे नया अंगरखा दे दिया।

❐

इसे स्कूल कहना ज़रूरी है

'इसे स्कूल कहना ज़रूरी है। बच्चे तो स्कूल ही जाते हैं। अगर हमने इसे ***स्कूल*** का नाम नहीं दिया, तो बच्चे यहां आयेंगे ही नहीं,' एक शिक्षक ने कहा। इस स्कूल का नाम है 'लिटिल न्यू स्कूल'। यह कोपेनहेगन, डेनमार्क की एक बस्ती में स्थित है। यहां बच्चे एक दूसरे से मिलते हैं, दिन भर बातें करते हैं, चीज़ें बनाते हैं और खेलते हैं। यह अन्य स्कूलों से भिन्न है। यहां शिक्षा के नाम पर कोई पढ़ाई नहीं होती। स्कूल में कुल 85 बच्चे हैं, छह साल से चौदह बरस की उम्र के। इस प्यारे, रोचक स्कूल में बच्चे अपनी मर्ज़ी के अनुसार ज़िंदगी जीते हैं। बच्चे यहां इसलिए आते हैं, क्योंकि उन्हें यहां बेहद मज़ा आता है। स्कूल में हाज़िरी नहीं ली जाती। अगर कोई बच्चा स्कूल नहीं आता है तो बाकी बच्चे यही समझते हैं कि वह अवश्य किसी बेहद रोचक काम में व्यस्त होगा। स्कूल वापस आने पर सभी बच्चे उसे घेर कर बैठ जाते हैं और उससे उसके रोमांचक कारनामों के बारे में पूछते हैं।

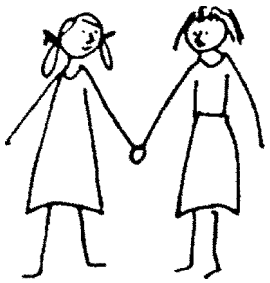

स्कूल में एक बड़ा हॉल और दो कमरे हैं। अन्य स्कूलों की तुलना में यह एक गरीब स्कूल है। न तो यहां विज्ञान की अच्छी

प्रयोगशाला है और न ही गणित सीखने के मंहगे उपकरण। कुछ अच्छी किताबें, पहेलियां और खिलौने अवश्य है। एक पियानो और गिटार भी है। एक बड़े टैंक में मछलियां भी हैं। एक मेज़ पर कुछ बढ़ई के औजार हैं जिनसे बच्चे ठोका-पीटी कर सकें। यहां न तो कोई विषय है और न ही कोई पाठ्यक्रम। अगर कोई बच्चा दिन भर केवल सुनहरी मछलियां को निहारता रहे, तो यह भी स्कूल को मान्य है। इसके पीछे शायद यह सोच है कि बच्चे कभी खाली नहीं बैठते। वह हमेशा कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। करने के दौरान ही वह दुनिया को समझते हैं और सीखते हैं। स्कूल के शिक्षक बहुत कुशल हैं। वह बहुत से हुनर जानते हैं और उन्हें बाहर की दुनिया का अच्छा अनुभव है। पेशे से उनमें कोई भी टीचर नहीं हैं। कोई साइकिल मकेनिक है तो कोई नर्स। क्योंकि वह इतनी सारी चीजें बना सकते हैं, इसलिए बच्चे उनकी इज्जत करते हैं।

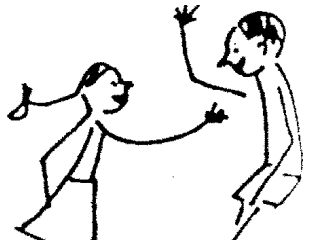

स्कूल में लगभग दो हज़ार लकड़ी की पेटियां हैं। पास के एक कारखाने ने इन्हें फेंक दिया था। बच्चे इन सभी क्रेटों को स्कूल में ले आए थे। इन आयताकार लकड़ी के डिब्बों से बच्चे दिन भर खेलते रहते। वह इन्हें ईंटों की तरह चुन-चुन कर दीवारें बनाते। उन्हीं को जमा कर कुर्सी-मेज़, अल्मारी और शेल्फ बनाते। सुबह के समय सभी बच्चे आपस में मिलकर अपनी कक्षा का नक्शा और उसकी योजना तय करते। फिर स्कूल का सारा सामान ढो कर बाहर निकालते। अब नये सिरे से दीवारें बनाई जातीं हैं। हॉल को इन पेटियों के जरिए अलग-अलग कमरों

में बांटा जाता है। एक कमरा नाच के लिए तो दूसरा संगीत के लिए। इस काम में सभी बच्चे हाथ बांटते, क्योंकि यह पूरी योजना भी तो उन्हीं की थी।

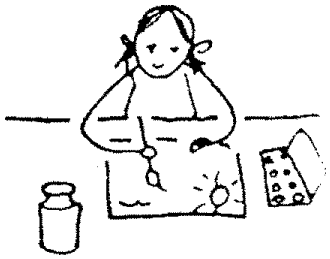

दिन में एक बार कोई बच्चा ढोलक नुमा ड्रम पीटने लगता और बाकी बच्चे नाचने लगते। संगीत की मस्ती में बच्चे घंटों नाचते रहते। एक कोने में एक बच्चा अपने से छोटों को कहानी सुना रहा होता। कुछ बच्चे गैस वेल्डिंग कर रहे होते। एक बालक बार-बार लोहे की कील को गैस की लौ पर लाल गर्म करता और फिर उसे लकड़ी में ठोक देता।

यहां बच्चे बिना रटे ही बहुत कुछ सीखते हैं। हफ्ते में एक-दो दिन स्कूल में ताला लगा कर सभी लोग स्थानीय बेकरी, बस-स्टैंड, डाकघर, स्टेशन आदि का चक्कर लगाते हैं। दिन भर बातचीत करने के कारण बच्चों की भाषा पर पकड़ बहुत मज़बूत हो गई है। किसी भी घटना का विवरण करते समय वह शब्दों की मानों तस्वीर खींच देते ह। इससे उनका आत्म विश्वास भी बढ़ता है। इस स्कूल से निकले सभी छात्रों ने दूसरे स्कूलों में अच्छे अंक प्राप्त कर सुंदर प्रदर्शन दिखाया।

स्कूल में शैक्षिक सामान, उपकरण बहुत कम थे। इसका एक कारण शायद यह था कि स्कूल में पैसों का अभाव था। परंतु अगर उनके पास अधिक धन होता भी तब भी वह उसे फिज़ूल के सामान पर खर्च न करते। बच्चों को जंगल की सैर और

पिकनिक मनाने में बहुत आनंद आता। एक बार स्कूल के बच्चों के एक ग्रुप ने स्वीडन (पास के देश) की पैदल यात्रा करी। अगर पैसे होते तो स्कूल एक पुरानी बस खरीदता, जिससे कि स्कूल के सारे बच्चे दूर-दराज़ की पहाड़ियों और समुद्र-तट का सैर-सपाटा कर सकते। तो ऐसा है न्यू लिटिल स्कूल। एक गरीब, परंतु अनूठा स्कूल। ❐

उदयाचल स्कूल

मुंबई का उदयाचल स्कूल देश के सबसे अच्छे स्कूलों में से एक है। इसे गोदरेज कंपनी चलाती है। स्कूल की स्थापना श्रीमती वकील ने की थी। उन्होंने कई साल गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आश्रम शांतिनिकेतन में काम किया था।

स्कूल में एक बालवाड़ी यानि प्री-स्कूल भी है। इसमें तीन वर्ष की आयु के बच्चे आते हैं और दिन भर अलग-अलग गतिविधियों में व्यस्त और मस्त रहते हैं। बच्चे घर से पुराने अखबार लाते हैं और उन्हें एक ड्रम में भिगो देते हैं। भीगने से कागज़ की लुग्दी बन जाती है। सुबह के समय जब बच्चों में बहुत जोश होता है तब वो लकड़ी के हथौड़ों से

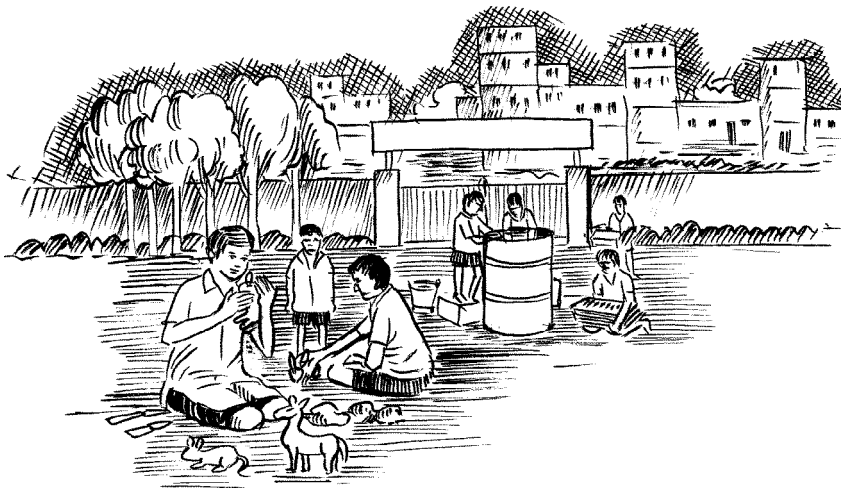

लुग्दी को ज़मीन पर पीट-पीट कर महीन बनाते हैं। इसमें उन्हें बड़ा मज़ा आता है। लुग्दी में गोंद और मिट्टी मिलाकर बच्चे उससे अनेक जानवर और खिलौने बनाते हैं। सूखने के बाद खिलौने रंगे जाते हैं। लुग्दी के बने खिलौने जल्दी टूटते नहीं हैं।

स्कूल में तीन सौ, रबड़ के ठप्पे हैं। इन्हें बहुत सस्ते में स्कूल में ही बनाया गया है। पुराने साइकिल के ट्यूब से पेड़, मोटर, घर आदि आकृतियां काटी जाती हैं और उन्हें सपाट लकड़ी या संगमरमर के टुकड़ों पर चिपका दिया जाता है। चार-पांच बच्चे एक गोले में बैठते हैं। उनके बीच एक थाली में रंग से भीगा मोटा कपड़ा रखा होता है। बच्चे पुराने अखबारों पर ठप्पों से अनेकों सुंदर और लुभावने चित्र बनाते हैं।

स्कूल में संगीत पर बहुत ज़ोर है। बच्चों ने चार-पांच तरह के वाद्य यंत्र बनाए हैं— जैसे खाली डिब्बे में कंकड़ भर कर झुनझुना, दो ढक्कनों का मंजीरा, एक डिब्बे पर तार तान कर बना इकतारा। कुछ बच्चे बाजे बजाते हैं और बाकि बच्चे नाचते हैं। यहां बालवाड़ी में क,ख,ग लिखना

या गिनती याद करना नहीं सिखाया जाता है। यहां खुशी-खुशी बच्चों को बचपना जीने दिया जाता है। ❐

रेल-स्कूल

इस जापानी स्कूल का नाम या तोमोए। स्थापना 1937 में हुई। स्कूल केवल आठ साल चला। उसके हेडमास्टर कोबायशी एक गज़ब के इंसान थे। स्कूल के क्लास ट्रेन के पुराने डिब्बों में लगते थे। इसमें एक डिब्बा पुस्तकालय भी था।

इस स्कूल के सुखद अनुभव '**तोत्तोचान**' नाम की पुस्तक में छपे। 1980 में जब यह किताब छपी तो उसने शिक्षा जगत में एक तहलका मचा दिया। सोलह महीनों के अंदर-अंदर इसकी पचास लाख प्रतियां

बिक गयीं। इस पुस्तक को **नेशनल बुक ट्रस्ट** ने 11 भारतीय भाषाओं में छापा है।

तोत्तोचान एक जिज्ञासु, कल्पनाशील और गर्मजोश लड़की है। उसे जिस चीज़ में मज़ा आता है वह झट से उसमें भिड़ जाती है। उसकी चंचल शरारतों के कारण उसे एक सामान्य स्कूल से निकाल दिया जाता है।

तोत्तोचान, रेल के डिब्बों वाला स्कूल खुद ही चुनती है। इस स्कूल में वह खासियतें पाती है। वह देखती है कि स्कूल का अपना कोई गीत नहीं है जिसे सबको रोज़ गाना ही हो। वहां किसी भी बच्चे को कुछ भी करने से रोका-टोका नहीं जाता। वहां के हेडमास्टर उसकी बातें लगातार चार-चार घंटों तक सुनते रह सकते हैं। वहां का काम पीरियड से बंधा हुआ नहीं है। बच्चे अपना काम अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार करते रह सकते हैं।

यहां शिक्षक खुद भाषण न देकर बच्चों को सीखने के अधिक से अधिक अनुभव उपलब्ध करवाते हैं। बच्चों को सैर के लिए ले जाया जाता है। उनकी गलतियों की शिकायत उनके मां-बाप से नहीं की जाती। यहां बच्चे अपने हेडमास्टर की पीठ पर चढ़ जाते हैं, गोद और कंधो पर लद जाते हैं। ज़रूरत पड़ने पर वह हेडमास्टर से पैसे उधार मांग लेते हैं। उनकी असफलताओं का वहां मज़ाक नहीं उड़ाया जाता। डांटा नहीं जाता। यह एक ऐसे स्कूल की सच्ची कहानी है जहां बच्चे खुशी-खुशी जाते थे। तोत्तोचान नाम की यह पुस्तक आप अवश्य पढ़ें। ❐

सच्ची शिक्षा

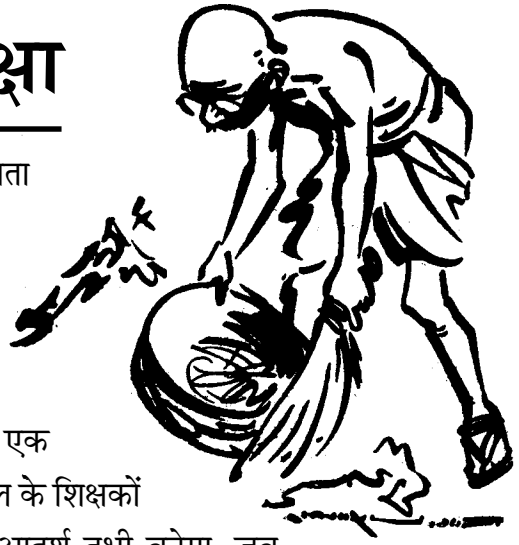

गांधीजी ने आम जनता से कहा, 'जब तक तुम झाड़ू और बाल्टी खुद अपने हाथ में नहीं उठाओगे, तब तक तुम्हारे शहरों में सफाई नहीं होगी'। एक बार गांधीजी ने मॉडल स्कूल के शिक्षकों से कहा, 'आपका स्कूल आदर्श तभी बनेगा, जब आप बच्चों को पढ़ाई के साथ-साथ भोजन पकाना और शौचालय साफ करना भी सिखायेंगे। उनके आश्रम में अलग-अलग जाति-धर्मों के सभी लोग सफाई में हाथ बांटते थे। सारा कचरा गड्ढों में भर दिया जाता था। हर फेंकी चीज का सदुपयोग होता था। सब्ज़ियों की छीलन, बचे खाने और शौचालय के मल से खाद बनती थी। गंदा पानी खेत में सिंचाई के काम आता था।

गांधी जी की शिक्षण पद्धति को बुनियादी तालीम के नाम से जाना जाता है। इसमें दैनिक उपयोग की चीजें बनाने और हाथ के काम पर अधिक ज़ोर है। यहां बच्चे स्कूल में तकली चलाना, खड्डी पर टाटपट्टी बुनना, चमड़े के जूते-चप्पल बनाना आदि कुशलतायें सीखते हैं। गांधीजी का विश्वास था कि जब आम लोग अपनी ज़रूरत की चीज़ें खुद बनायेंगे तभी देश आत्म-निर्भर होगा।

आज साधारण आदमी खुद के जीवन पर नियंत्रण खो बैठा है। आज जब हमारा समाज सूत कातना, कपड़ा बुनना, खाना पकाना,

पेड़ लगाना, सफाई रखना जैसे बुनियादी हुनर भूल रहा है, तो हमें एक बार फिर इन कुशलताओं को स्कूली पढ़ाई का एक हिस्सा बनाना होगा। ❐

चूहों की कथा, बच्चों की व्यथा

राबर्ट रोज़नथाल अमरीका में मनोविज्ञान के प्रोफेसर थे। उन्होंने दो शोध छात्रों को 5-5 चूहे दिए और उनसे चूहों को एक भूलभुलइया में से निकलना सिखाने को कहा। पहले छात्र से उन्होंने चुपके से कहा, ''यह होशियार चूहे हैं। यह अवश्य सफल होंगे।'' दूसरे छात्र के कान में उन्होंने फुसफुसाया, ''यह कमज़ोर दिमाग के चूहे हैं, फिर भी तुम कोशिश करो।'' यह अंतर केवल छात्रों के दिमाग में था। चूहे लगभग एक जैसे थे। परीक्षा वाले दिन 'होशियार' चूहे झटपट भूलभुलइया पार कर गए, जबकि 'कमज़ोर दिमाग' वाले चूहे अपनी जगह से हिले तक नहीं।

इन आश्चर्यजनक परिणामों के बाद रोज़नथाल ने इस प्रयोग को एक स्कूल में दोहराया। मई 1964 में उनकी टीम सेन फ्रैंसिस्को शहर के एक गरीब प्राथमिक स्कूल में पहुंची। यहां गरीब मज़दूरों और अल्पसंख्यकों के बच्चे आते थे। रोजनथाल ने झूठमूठ कहा कि वह हावर्ड विश्वविद्यालय से आये हैं और यह शोध नेशनल साइंस फाउंडेशन के लिए कर रहे हैं। इतने बड़े नाम सुन कर गरीब स्कूल के शिक्षकों ने अपने स्वागत द्वार खोल दिए।

रोज़नथाल ने सभी बच्चों को एक स्टैंडर्ड आई.क्यू. टेस्ट दिया। इसके परिणाम उन्होंने शिक्षकों को नहीं बताए। बाद में हाज़िरी रजिस्टर को लेकर, बिना किसी आधार के उन्होंने हर तीसरे बच्चे को 'मंद या कमज़ोर' और हरेक चौथे बच्चे को 'होशियार' करार दे दिया। अब वह हर चौथे महीने आते और बच्चों को एक स्टैंडर्ड आई.क्यू. टेस्ट देते। यह सिलसिला दो साल तक चला। इसके नतीज़ों ने सारी दुनिया को चौंका दिया। जो बच्चे शुरू में होशियार थे पर रोज़नथाल द्वारा 'कमज़ोर' करार कर दिए गए थे, उनकी आई.क्यू. वास्तव में गिर गई थी। जो बच्चे दरअसल कमज़ोर थे पर रोज़नथाल द्वारा 'अक्लमंद' करार करे गए थे उनकी आई.क्यू. पहले से कहीं अच्छी हो गई थी। शिक्षक इन बच्चों को अधिक प्रोत्साहन देने लगे थे, उनसे ज़्यादा प्रश्न पूछने लगे थे।

इस प्रयोग में बस एक सबक है। अगर शिक्षक का विश्वास है कि बच्चा सफल होगा, तो वह बच्चा ज़रूर अच्छा करेगा। इसलिए बच्चे की सफलता में पूरा विश्वास रखें। यह सबसे सस्ता शैक्षिक सुधार होगा। ❐